International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5. 12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 195-197

भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण

डॉ० इन्दुमती सिंह
पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग कृ धातु तिन् प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है सुधारना, सुन्दर बनाना, पूर्ण बनाना। परि का तात्पर्य है चारो तरफ और आवरण का तात्पर्य है ढंका हुआ अर्थात् हम अपने चारो ओर से जिन तत्वों से घिरे हो वही पर्यावरण है।

भारत की आदि संस्कृति प्रकृति के साहचर्य–सामीप्य में परिमार्जित व पोषित हुई थी। अतः प्राचीन संस्कृति में प्रकृति के साथ सहज स्वाभाविक तादात्म्य और समन्वय था। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो संस्कृति हमारे जीवन यापन की शैली है। संस्कृति ही सभ्यता का उजास है। जहाँ सभ्यता व्यक्ति और व्यक्तित्व का वाह्य विकास करती है। वहीं संस्कृति अन्य वृत्तियों का परिमार्जन और शोधन करती है, श्रेवसता का उद्बोधन करती है। तत्वज्ञानियों के अनुसार सभ्यता साधन सम्पन्नता की सूचक है तो संस्कृति आत्मिक बल का गुण है।

जब हम आँख खोलते हैं, तो हमारे चारों ओर प्रकृति का जो समूचा रूप दिखाई पड़ता है, वही पर्यावरण है। पर्यावरण के अन्तर्गत वे सभी सजीव व निर्जीव कारक आते हैं; जो समन्वित रूप से हमारे लिये एक रक्षा कवच की सृष्टि करते हैं। वस्तुतः मनुष्य एवं पर्यावरण का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। यही कारण है कि दोनों परस्पर अपनी क्रियाओं से एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं।

पर्यावरण के प्रति भारतीय मनीषा आदि काल से ही सचेत रही है। हमारे ऋषि–मुनियों ने प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को जानने का प्रयास किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह सृष्टि पंचमहाभूतों – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के सामंजस्य से बनी है। वैदिक ऋषियों ने समस्त प्राकृतिक शक्तियों की महिमा का मुक्तकंठ से स्तुतिगान किया है। हमारे सभी देवी–देवताओं के स्वरूप के मूल में प्राकृतिक शक्तियाँ ही विराजमान हैं आध्यात्मवादी वैदिक ऋषि पूर्णतः पर्यावरण प्रदूषण मुक्त धरा की कल्पना करता है, जहाँ प्रत्येक प्राणी को ऐसा अनुभव हो, जैसे सम्पूर्ण वायुमण्डल मधु की वर्षा कर रहा है। समस्त वनस्पतियाँ एवं औषधियाँ हमारे लिये पृथ्वी का अमृत–तत्व संचित करती हैं। प्रातः स्मरण में हम प्रतिदिन गंधवती पृथ्वी, रसमय जल, सुखद स्पर्शयुक्त वायु, तेजस्वी अग्नि और शब्द गुण सम्पन्न आकाश की कामना करते हैं। वैदिक षांतिपाठ इसी पवित्र कल्पना से परिपूर्ण एक महत्वपूर्ण अभिलेख है, जिसमें वर्णित है कि इस पर्यावरण का प्रत्येक तत्व शांतिदायक हो।

भारतीय संस्कृति में भौगोलिक, खगोलीय एवं प्राकृतिक पर्यावरण की चिंता के साथ नैतिक एवं आधत्मिक पर्यावरण के प्रति भी विशेष ध्यान दिया गया है। हमारे मूलभूत संस्कारों में धर्म के व्याज से ऐसे पवित्र विचारों का आधान कर दिया गया है कि हम स्वतः मानसिक, वाचिक एवं कायिक सुचिता का व्यवहार करें। प्रकृति तत्वों के साथ हमने रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें अपने व्यक्तित्व के साथ पूरी तरह जोड़ लिया है। पृथ्वी को हमने माँ का पद प्रदान किया – *माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः*। अग्नि तत्व के साकार रूप सूर्य को ऊर्जा का अपरिमित स्रोत स्वीकार किया गया। ऋग्वेद की ऋचायें कहती हैं कि सूर्य की रश्मियों से वायुमण्डल में विद्यमान असंख्य कीटाणु और विषाणु नष्ट हो जाते हैं। वायु तत्व का स्तुतिगान करते हुए हमारे ऋषि कहते हैं – हे वायु ! अपनी औषधि ले आओ और सब दोषों को दूर करो, क्योंकि तुम सब औषधियों से युक्त हो। जल तत्व की स्तुति में वेद कहते हैं – हे जल ! तुम अन्न की प्राप्ति में उपयोगी हो। तुम पर नाना प्रकार की वनस्पतियाँ अन्न आदि निर्भर हैं। तुम औषधि रूप हो। इन तत्वों के प्रति भारतीय मनीषियों के ये भावोद्गार जहाँ उनके अपरिमित सम्मान का भाव व्यक्त करते हैं वहीं उनके औषधीय एवं व्यावहारिक ज्ञान का परिचय भी कराते हैं।

हमारा साहित्य वृक्षों के प्रति प्रेमभाव का सुन्दर निदर्शन करता है। महाकवि कालिदास का सुप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् इस दृष्टि से विशेषतः उल्लेखनीय है। इसकी नायिका शकुन्तला साक्षात् वन कन्या है। प्रकृति की पुत्री रूपा वह वृक्षों और लताओं से सहोदर भाई–बहन का सा सहज स्नेह रखती है। आश्रम के कुलपति कण्व की आज्ञा से नहीं, बल्कि स्वेच्छया वह उनको सींचती है। उनको जल पिलाये बिना वह स्वयं भी जल ग्रहण नहीं करती। मंडन प्रिया होने पर भी अतिरिक्त स्नेहवश वह उनके फल–पत्तियाँ नहीं तोड़ती। मनुष्य की अन्तः प्रकृति और वाह्य प्रकृति का ऐसा अपूर्व सम्बन्ध विश्व की किसी अन्य संस्कृति में दुर्लभ है। प्रकृति के प्रति शकुन्तला के वियोग में लतायें भी पीले पत्तों के रूप में आँसू बहाती हैं। पति गृह जाती शकुन्तला को वन देवता अलंकरण के लिये नाना उपहार देते हैं।

पातुं न प्रथमम् व्यवस्यति जलं युष्माष्व पीतेषु या
नान्दते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहे न या पल्लवम्।
आद्ये यः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युस्वः
सेमं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वेनुज्ञायाताम्।।
क्षौमं केनचिदिन्दु पाण्डु तरुणा माङल्यमविष्कृतं
निष्ठूयूतश्चरणोपभोग सुलभो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवता करतलैरापर्वभागोत्थिते –
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद् भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।[1]

सूर के पदों में यमुना तट के कुंज वनों और लताओं का सुरम्य वर्णन हुआ है तो भारतेन्दु जी कालिन्दी कूल के तमाल वृक्षों का ललित वर्णन करते हैं –

''तरनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहु छाये''

आधुनिक युग में छायावादी कवियों विशेषतः प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने इस देश की वन सुषमा का मनोहारी वर्णन करके अपने प्रकृति प्रेम को साकार किया है।

मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम, उस पर नीलम नभ आच्छादन।
निरुपम हिमांत में स्निग्धशांत, निज शोभा से हरता जन–मन।।

भारतीय संस्कृति सर्वात्मवाद पर अवलम्बित है। यहाँ अणोरणीयम महतोमहीयान् का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है, जिसके अनुसार पर ब्रह्म की व्याप्ति अणु जैसे लघुतम पदार्थ से लेकर सृष्टि के

महानतम तत्व तक सभी में देखी गयी है। इसी सिद्धान्त के आधार पर यहाँ जीवमात्र से स्नेह किया जाता है। गौ को माता मानने वाली ''गावों विश्वस्य मातरः''। इस संस्कृति ने पृथ्वी को गौ के रूप में पूजा और कामधेनु के रूप में एक ऐसी गौ की कल्पना की जो समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करती है। कृष्ण का गोवर्धन पूजन अपने आप में गौसमाज और वन्य–जीवन संरक्षण का एक सशक्त आन्दोलन है, जिसके फलस्वरूप घर–घर में दूध–दही की नदियाँ बह चलीं।

कोमल ह्रदया शकुन्तला से हरिण इतने घुले–मिले हैं ि कवे उनकी अंजलि से नीवार धान के कण खाते हैं।

उद्गलित दर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।[2]

कादम्बरी में महर्षि जाबालि के आश्रम का वर्णन करते हुए वाण भट्ट ने ऐसे सौहार्दपूर्ण वातावरण की सृष्टि की है, जिसमें मृग, सिंह, सर्प और मूषक समस्त बैर भुलाकर एक साथ विचरण करते हैं।

कहा जाता है कि राजा प्रजावत्सल हो तो प्रकृति स्वतः शुद्ध वातावरण में धन धान्य से परिपूर्ण कर देती है और पर्यावरण संरक्षण का सुन्दर, सम्यक दृश्य कुमार संभवम् में परिलक्षित होता है जब राजा पृथु हिमालय को बछड़ा बनाकर पृथ्वी रूपी गाय से सर्वस्व प्राप्त कर लेते हैं और उसी हिमालय पर्वत पर देवदारु नाम के वृक्षों पर हाथियों के सिर खुजलाने से उस वृक्ष से जो दूध की धारा निकलती है उससे सम्पूर्ण वातावरण सुगन्धित हो उठता है।

यः सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौस्थिते दोग्धरिदोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथुपदिण्टां दुदुहुर्धरित्रीम्।।
कपोल कण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभी करोति।।[3]

श्रीराम चरित मानस में ऐसे ही सुन्दर वातावरण का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसी दास जी लिखते हैं –

''करि केहरि कपि को लकुरंगा। विगत बैर विचरहिं एक संगा।।''

इतना ही नहीं जब मानव जगत प्रकृति के समान उत्कृष्ट हो जाता है तो प्रकृति की पवित्रता, श्रेष्ठता के समान स्वयं को बना लेता है तथा प्रकृति स्वयं उसके सहयोग में अपना योगदान देने लगती है।

''लता विटप माँगे मधु चवही। मनभावतो धेनु पै स्रवही।।''

अभयारण्य शब्द को सच्ची सार्थकता यहीं प्राप्त होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय है कि सम्राट अशोक ने अपने शासन काल में वन्य जीवों के वध को दण्डनीय अपराध घोषित किया था।

पक्षी वर्ग के प्रति भी हमारा ह्रदय सदैव सदय और सरस रहा है। यह एक विडम्बना है कि हमारे आदिकाव्य रामायण के प्रथम श्लोक की सृष्टि के मूल में एक पक्षी के वध से जन्य पीड़ा रही। तमसा तट की सुरम्य वनस्थली में विहार करते क्रौंच युगल में से एक को सहसा व्याध के द्वारा मार दिये जाने पर ऋषि वाल्मीकि का शोक, श्लोक में परिणत हो गया।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकम्ऽवधीः काम मोहितम्।।

हमारी संस्कृति में पक्षियों के परित्राण के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। महाराज शिव ने एक कपोत की रक्षा के लिये अपनी देह का समर्पण कर दिया। एक अन्य कथा के अनुसार सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व कपिलवस्तु के उद्यान में घायल हंस को बचाकर अपने करुणावतार होने का पूर्व संकेत दिया था।

भारतीय संस्कृति पर्यावरण के प्रति अत्यन्त संवेदनशील व जागरूक रही है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् के नांदीपाठ में अष्टमूर्ति शिव का स्मरण करके प्रकृति के सभी तत्वों का समन्वित रूप से ध्यान किया गया है, इनका परस्पर सन्तुलन और सामंजस्य ही प्रकृति में शिव (कल्याण) तत्व की प्रतिष्ठा करता है – जैसे रक्षित धर्म ही मनुष्य की रक्षा करने में समर्थ होता है (धर्मो रक्षति रक्षितः) वैसे ही संरक्षित पर्यावरण ही हमारी रक्षा कर सकता है।

या सृष्टिः स्रष्टुराद्याः वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधन्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
या माहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।[4]

वन्य संस्कृति को प्रायः नगर संस्कृति ने दूषित किया है जिसके दुष्परिणाम आज हम सभी को सहने पड़ रहे है। कालिदास ने इसका संकेत करते हुए अभिज्ञान शाकुन्तलम् में एक सजीव चित्र खींचा है। महाराज दुष्यन्त के वनागमन से उनके रथ से उड़ने वाली धूल वृक्षों पर सूख रहे मुनिजनों के वस्त्रों को प्रदूषित कर रही है। सेना के आगमन से हड़बड़ाकर कोई हाथी सहसा उस ओर निकल आया है, जिसके कारण अनेक वृक्ष लताएं टूट गयी हैं। हिरनों का समूह भ्रमवश खड़ा हुआ है, तपोवन पर जैसे साक्षात् विघ्न आ पड़ा है और अब वह रक्षणीय है। यह चित्र प्रतीकात्मक शैली में तपोवन की षांत संस्कृति पर नगरों के दुष्प्रभाव का सषक्त अंकन करता है।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपविषजलार्द्रवल्कलेषु।
पतति परिणतारुण प्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु।।[5]

ध्वनि प्रदूषण के विषय में भी हमारे मनीषियों की जागरूकता प्रशंसनीय है। वेदों में कहा गया है कि मनुष्य को आचरण की मर्यादा निर्धारित करके ही ध्वनि का प्रयोग करना चाहिये, अन्यथा असंयमित ध्वनि प्रयोग पर्यावरण प्रदूषण की सृष्टि करता है।

जल प्रदूषण को ध्यान में रखते हुए हमारी संस्कृति में नदी तटों की स्वच्छता और उनके जल को प्रदूषित न करने के सन्दर्भ में विशेष नियम बनाये गये थे। यमुना जल में रहने वाले कालिय नाग का मर्दन और उसे सुदूर चले जाने का आदेश यह इंगित करता है कि यह भी जल प्रदूषण का सशक्त प्रतीक है।

आधुनिकता के नाम पर पर्यावरण की अवमानना हमारी एक आदत सी बन गई है। प्रकृति विजय का स्वप्न देखते–देखते हम यह भूल गये हैं कि मनुष्य प्रकृति पुत्र है। मनुष्य का एक प्रभावशाली घटक है, किन्तु पर्यावरण से परे उसका कोई अस्तित्व नहीं। अपने नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास की चरम सीमा पर मनुष्य तभी पहुँचेगा, जब वह अपनी प्राकृतिक संपदाओं का उचित रूप से उपयोग करेगा और वातावरण को स्वच्छ रखते हुए जैविक एवं भौतिक तत्वों का संतुलन बनाये रखेगा।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने पूर्वज ऋषि–मनीषियों के सुविचारित एवं सुचिंतित पर्यावरण संरक्षण के मार्ग पर चलकर प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करें। वस्तुतः प्रकृति पोषण में ही हमारा श्रेयस् एवं कल्याण निहित है।

आज वर्तमान समय में पर्यावरण एक बहुत बड़ी समस्या बनकर हमारे सामने खड़ा है। 2015 में वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी

जी ने पेरिस सम्मेलन में आह्वान किया कि पर्यावरण समस्या किसी एक व्यक्ति अथवा देश की समस्या नहीं बल्कि हम सबकी समस्या और जिम्मेदारी है। इसके लिए अन्यान्य देशों से हस्ताक्षर भी करवाया किन्तु केवल प्रधानमंत्री अथवा किसी व्यक्ति विशेष की पहल मात्र की आवश्यकता नहीं है बल्कि सबका दायित्व है और जिस दिन हम अपने दायित्व को निभाना प्रारम्भ कर दें, पर्यावरण के प्रति पुनः संवेदनशील होकर उसका संरक्षण संवर्धन करने लगे और इसकी अति आवश्यकता भी है तो वह दिन दूर नहीं होगा जब गोस्वामी तुलसीदास का वचन सत्य हो जायेगा कि –

शीतल मंद सुरभि बहबाऊ। हर्षित सुर सन्तन मन चाऊ।।
मध्य दिवस अतिशीत न घामा। पावन काल लोक विश्रामा।।[6]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – 4/9, 4/5
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – 4/12
3. कुमार सम्भवम् – 1/2, 1/9
4. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – 1/1
5. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – 1/28
6. श्रीराम चरित मानस – 1/191/2–3